

प्रामाण्य विचार

दर्शन शास्त्रों में पदार्थ विवेचना के लिए चार कोटियाँ मानी गई हैं -

(1) प्रमाण

(2) प्रमेय

(3) प्रमिति

(4) प्रमाता।

प्रमाण - प्रमाण उसे कहते हैं जिससे विषय का निश्चयात्मक ज्ञान हो और विषय का निर्धारण हो।

प्रमेय - प्रमाण के द्वारा जिसका ज्ञान हो उसे प्रमेय (वस्तु-विषय) कहते हैं।

प्रमिति - प्रमाण के द्वारा जिस किसी भी विषय का निश्चयात्मक ज्ञान हो, उसे प्रमिति कहते हैं।

प्रमाता - प्रमाण के द्वारा प्रमेय ज्ञान को जो जानता है - उसे प्रमाता कहते हैं।

यहाँ विभिन्न भारतीय दार्शनिकों ने ज्ञान के विषय में द्विविध विचार किया है -

ज्ञान का प्रामाण्य स्वतः ग्राह्य है अथवा परतः ग्राह्य है। स्वतः कोटि में मीमांसक, वेदांती और बौद्ध आते हैं। परतः कोटि में न्याय, वैशेषिक, योग, जैन और चार्वाक आते हैं। यहाँ प्रामाण्य शब्द से अर्थतथात्व लक्षण (विषय का यथार्थ स्वरूप) प्रामाण्य समझना चाहिए, न कि अज्ञातार्थ ज्ञापकत्व लक्षण प्रामाण्य। चोदनालक्षणोद्धर्मः सूत्र में - "ननु अतथाभूतमप्यर्थं ब्रूयात् चोदना" इत्यादि भाष्य से अर्थतथात्व ही विवक्षित है। "तच्च अबाधितत्वं, अर्थनिरुधो

धर्म विशेषः, तस्य ज्ञानेन निरूपणात्"। चौदना सूत्र के भाष्य "अतथात्व भूतं अर्थ" से अबाधित्व अर्थनिष्ठ धर्म विवक्षित है, जिसका निरूपण ज्ञान के द्वारा होता है। अतएव प्रामाण्य को ज्ञाननिष्ठ कहा जाता है। वह परतः उत्पन्न और परतः गृहीत होता है। यह नैयायिकों का सिद्धांत है। अर्थात् जिस सामग्री से ज्ञान उत्पन्न होता है, उससे प्रामाण्य उत्पन्न न होकर अन्य सामग्री से उत्पन्न होता है एवं जिससे ज्ञान ग्रहीत होता है, उससे प्रामाण्य गृहीत न होकर अन्य गुण ज्ञानादि से गृहीत होता है। इससे यह आया कि ज्ञानोत्पादक सामग्री से भिन्न सामग्री से प्रामाण्य उत्पन्न होता है और ज्ञान ग्राहक सामग्री से भिन्न सामग्री के द्वारा प्रामाण्य गृहीत होता है। इस मत में प्रामाण्य और अप्रामाण्य दोनों परतः होते हैं। यह नैयायिक संमत विवेचना है।

उपर्युक्त मत में मीमांसक लोग अनवस्था दोष बताते हैं (अनवस्था उसे कहते हैं जिसमें कल्पना का विश्राम न हो।) जिससे ज्ञानमत प्रामाण्य कभी सिद्ध नहीं हो सकता। अर्थात् लोकव्यवहार विच्छिन्न हो जाएगा। अतः ज्ञानगत प्रामाण्य स्वतः उत्पन्न और स्वतः गृहीत होता है। अभिप्राय यह है कि जिस सामग्री से ज्ञान उत्पन्न होता है, उसी सामग्री से प्रामाण्य भी उत्पन्न होता है; और जिस सामग्री से ज्ञान गृहीत होता है उसी सामग्री से प्रामाण्य भी गृहीत होता है। यही स्वतःप्रामाण्यवादी मीमांसकादिकों का प्रामाण्य का स्वतस्त्व है, जिसका [कुमारिल भट्ट](#) ने अपने ग्रंथ [भाट्ट वार्तिक](#) में अनेक युक्तियों से समर्थन किया है -

स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमिति गम्यताम्।

नहि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते॥

परापेक्षं प्रमाणत्वं नात्मानं लभते क्वचित्।

मूलोच्छेदकरं पक्षं कोहि नामाध्यवस्यति॥" -- शा० दी०

यहाँ भट्टमत में ज्ञान अनुमेय है। ज्ञान के विषय में कुछ अतिशय उत्पन्न होता है जिससे "ज्ञातोघटः" यह अनुभव होता है। इससे ज्ञातता नामक एक धर्म घटादि विषय में उत्पन्न होता है, जिसे प्राकट्यम्, भासनं, प्रकाशः आदि शब्दों से कहा जाता है। इससे यह आया कि ज्ञातता लिंगक अनुमान से ज्ञान का ग्रहण होता है। इसी से प्रामाण्य का भी ग्रहण होता है।

प्रभाकर (गुरु) मत में ज्ञान स्वयं प्रकाश है। अतः ज्ञान से ही ज्ञाननिष्ठ प्रामाण्य का भी ग्रहण होता है। अतएव स्वतः प्रामाण्य दोनों मतों में समान है, जिसका विवेचन "[श्लोकवार्तिक](#)", "[प्रकरण पंजिका](#)", "[न्याय रत्नमाला](#)" में विस्तृत रूप से किया गया है।

0000